काव्य-भेद contd.

अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य - जहाँ पर मुख्यार्थ अथवा अभिधा से प्राप्त अर्थ अपने अर्थ में प्रयुक्त न होकर अपने विशेष रूप से दूसरे अर्थ में परिणत हो जाता है, मुख्यार्थ के इस स्वरूपभूत अर्थान्तर में संक्रान्त हो जाने के कारण ही उसको भी अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य कहा जाता है। यथा-

'त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायेऽत्र तिष्ठति।
आत्मीयां मतिमास्थाय स्थितिमत्र विधेहि तत्॥

(अर्थात्-"मैं तुमसे कहता हूँ कि यहाँ विद्वानों का समूह उपस्थित है इसलिए अपनी बुद्धि को ठीक रखकर ही इनके वाच्य वाणी आदि का व्यवहार करना।")

इस पद्य में कोई हितैषी गुरु अपने शिष्य को समझा रहे हैं। इसलिए 'वच्मि' क्रिया-पद का बोलना, सामान्य कहना आदि न होकर उपदेशरूप अर्थान्तर में परिणत हो जाता है। यहाँ वक्ता का 'सम्बोध्य' अर्थात् जिसे वह संबोधित कर रहा है, उसके प्रति अत्यधिक अपनेपन का भाव व्यञ्जित होता है।

② अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य - जहाँ शब्द अपने मुख्यार्थ का पूरी तरह से परित्याग करके दूसरे अर्थ का बोध कराता है, वहाँ मुख्यार्थ के अत्यन्त तिरस्कृत होने के कारण 'अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य' की अन्वर्थकता सिद्ध होती है। यथा - "उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते? सुजनता प्रथिता भवता परम्। विदधदीदृशमेव सदा सखे! सुखितामास्व ततः शरदां शतम्॥"

इस पहले भेद में अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य में मुख्यार्थ का अर्थान्तर में संक्रमण अर्थात् प्रवेश हो जाता है, उसका अपना स्वरूप पूरी तरह नष्ट नहीं

Scanned with CamScanner

होता है, इसलिए वहाँ जो लक्षणा होती है उसे अजहत्स्वार्था (जिसमें स्वार्थ अर्थात् मुख्यार्थ पूरी तरह से नहीं त्यागा गया है) कहते हैं। दूसरे अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य में स्वार्थ (मुख्यार्थ) का पूरा तिरस्कार या परित्याग होने पर ही 'उपकृतम्' आदि के स्थान पर 'अपकृतम्' आदि) दूसरा अर्थ आता है; इसलिए यह 'जहत्स्वार्था' (जिसमें 'स्वार्थ' का परित्याग हो जाता है) लक्षणा होती है।

विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि भेद -

'विवक्षितञ्चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः।' (मम्मट)

अर्थात् "जहाँ वाच्यार्थ विवक्षित हो किन्तु वह अन्यपर हो अर्थात् व्यंग्यार्थ का बोध कराने में उसका तात्पर्य हो वह विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि कहलाता है।"

मम्मट ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा - जहाँ वाच्य, विवक्षित अर्थात् प्रकाशित - स्वरूप रहता हुआ अन्यपर अर्थात् व्यंग्यनिष्ठ होता है, वह दूसरा ध्वनिभेद विवक्षितान्यपरवाच्य है। यहाँ पर वाच्यार्थ अपने स्वरूप को प्रकाशित करते हुए उसी प्रकार व्यंग्यार्थ का प्रकाशक होता है, जैसे दीपक स्वयं प्रकाशित रहकर ही घटादि वस्तुओं का प्रकाशक होता है।

विवक्षितान्यपरवाच्य के दो भेद हैं -

'कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यंग्यो लक्ष्यव्यंग्यक्रमः परः।'

प्रथम - अलक्ष्यक्रमव्यंग्य द्वितीय - लक्ष्यक्रमव्यंग्य

Contd.

Leena Pahwa
Skt. Deptt.
B.A. III yr.